चतुर्दश सर्ग

अनुताप

(सार छन्द)

बैठी मूक एक कोने में,
कुन्ती युद्ध शिविर में।
बार-बार शंका भुजङ्गिनी
प्रकटे हृदय विवर में।
मेरे दोनों लाल समुद्यत,
आज परस्पर वध को।
रक्षा करो राम तुम उनकी,
आओ छोड़ अवध को॥1॥

बैठी रहे जननि चुप घर में,
लड़ें पुत्र क्या देखा।
इससे पूर्व किसी ने विधि का,
इतना निर्मम लेखा।
विजय-पराजय दोनों होंगे,
आज मातृ-मर्मान्तिक।
इससे पूर्व कृपा दिखलाओ,
मुझ पर अपनी अन्तक[1] ॥2॥

1. यमराज।

मृत्यु सुखद लगती है कैसी,
दुस्सह विषम घड़ी है।
हाय आज कोमल ममता पर,
विपदा बहुत बड़ी है।
मेरी करुण पुकार सुनो तुम,
हे शिव आज कहाँ हो।
तुम त्रिलोक के नाथ तुम्हारे,
होते अशिव यहाँ हो ॥3॥

उभय दिशा से वेगवान शर,
तीक्ष्ण छूटते होंगे।
इस वपु के ही जाये तन से,
रुधिर लूटते होंगे।
नियति दिखाने चली मुझे क्या,
अपने ही सुत के शव।
बनो सारथी मुझे निकालो,
इस विपत्ति से केशव ॥4॥

मैंने तेरे लिए किया क्या,
केवल जन्म दिया है।
त्याग तुझे ओढ़ा तम मैंने,
तू मम नयन दिया है।
अपने लिए नहीं कुछ चाहा,
किन्तु न माना मानी।
माता पर उपकार कर गया,
पाण्डव-जीवन-दानी ॥5॥

क्यों न बने त्यागी तू तेरा,
त्याग मूल जीवन है।
विषम-व्यथा-जननी मेरा परि-,
त्यागभूल जीवन है।
अपयशगोपन[1] पर मैं जीवित,
तू यश पर मरता है।
मैं ढँकती हूँ पाप शाप भी,
तू हँसकर वरता है ॥6॥

आशंकाओं ने क्यों परितः[2],
आज मुझे है घेरा।
एक एक क्षण युग-सा कटता,
युद्ध शिविर में मेरा।
आत्मा एक प्राण है दूजा,
कोई यदि निकलेगा।
ममता का शरीर निश्चेतन,
तत्क्षण वहीं गिरेगा ॥7॥

हुए कर्णगत शब्द वज्र से,
विजय मिली अर्जुन को।
मोद मनाते सारे भाई क्या,
बतलाऊँ उनको।
जिसके वध पर हर्षित इतने,
वह था उनका भ्राता।
देते जय-उपहार जिसे वे,
वह दुखियारी माता ॥8॥

---

1. अकीर्ति छिपाना; 2. चारों ओर से।

बहा किनारे पर आयी थी,
उसने किया किनारा।
गया जननि को दीन बनाकर,
जो था दीन सहारा।
अंशुमान[1] का अंश बनाकर,
गया तमावृत जीवन।
बन्धुभाव पर अर्पित जन का,
हरे बन्धु ही जीवन ॥9॥

पा एकान्त लिपट केशव से,
फूट-फूटकर रोयी।
इससे बड़ा और दुःख दे दे,
नियति बचा यदि कोई।
मेरी जीवन नौका बहती,
रही सदा दृगजल पर।
सुत को छाया दे न सकी,
यह दाग लगा अंचल पर ॥10॥

तुम तो हरि सर्वज्ञ जानते,
मन की व्यथा हमारे।
तुम योगी पर बनें कौन विधि,
हम भी सदृश तुम्हारे।
क्या बोला था अन्तिम क्षण में,
कुछ तो मुझे बताओ।
कैसे गिरा वीर सुत रण में,
मुझसे कुछ न छिपाओ ॥11॥

---

1. सूर्य।

पाण्डव जननि धीर धारो तुम,
और अधिक मत रोओ।
खोया एक तनय औरों को,
बतलाकर मत खोओ।
आया जो अकीर्तिभय लेकर,
गया कीर्ति फैलाकर।
एक तुम्हीं को नहीं चला है,
जग को आज रुलाकर ॥12॥

क्षत्राणी हो पुत्र तुम्हारा,
गया वीरगति पाकर।
महावीरजा चलो विश्व में,
गर्वित शीश उठाकर।
आज युद्ध की परिणति[1] ने,
जय परिभाषा बदली है।
शाश्वत विजयी कर्ण परा—,
जय हमको घोर मिली है ॥13॥

नहीं पार्थ के नाराचों[2] ने,
उसकी बेधी काया।
नहीं आपकी युद्ध नीति ने,
उसको कृष्ण हराया।
माताएँ ही देतीं सुत को,
शीतल आँचल छाया।
मैं सर्पिणी कराल लाल,
मैंने तो अपना खाया ॥14॥

---

1. परिणाम; 2. बाण।

त्यागा था असहाय किन्तु,
प्रतिशोध यही लेना था।
छोड़ जननि निरुपाय स्वर्ग,
की राह पकड़ लेना था।
क्या इसके अतिरिक्त दण्ड,
माता के हेतु नहीं है।
हमें जोड़ने वाला अब क्या,
कोई सेतु नहीं है? ॥15॥

निज किल्विष[1] गोपन[2] प्रयास में
दीपक पृथा बुझाया।
किन्तु कालिमा को ही मनकी
तूने वृथा बढ़ाया।
धो पाती यह नहीं कालिमा
मेरो दृग जल-धारा।
तम में ही अब तक भटकी
हूँ भटकूँ जीवन सारा ॥16॥

अन्तिम दर्शन ही माधव
उसका मुझको करवादो।
एक आर्त माता की अन्तिम
इच्छा यह भरवादो।
चलो रक्तरञ्जित मस्तक
धो डालूँ रोकर मन भर।
दह्यमान[3] मेरा उर शायद
शीतल हो बस क्षण भर ॥17॥

---

1. पाप; 2. छिपाना; 3. जलता हुआ।

युद्ध की विभीषिका ही चारों ओर दीखती थी
लेके चले माता को दिखाने कुरुक्षेत्र को।
पेट चोर खींचते थे आँतें गिद्ध और कहीं
भाल बैठ वायस निकालता था नेत्र को।
वीरों के गम्भीर घाव छोड़ते थे रक्त धार
और उसे स्वाद लेके श्वान कहीं चाटते।
ऐसा परिणाम देखें तो भी लोग बार-बार
लाशों से ही धरा को अनेक बार पाटते ॥18॥

(घनाक्षरी)

धूल से ही धूसरित देखी देह लाड़ले की
रथ के समीप भू पै रक्त से रँगी हुई।
एक क्षण देख अनिमेष वेश वत्स का ये
छिन्न लता जैसी गिरी शोक में पगी हुई।
हाय मेरे लाल बस तीन शब्द बोल सकी
ढही जैसे क्षार की ही काया हो बनी हुई।
फाड़-फाड़ चारों ओर लोचनों को देखती है
मानो कोई घोर स्वप्न देख के जगी हुई ॥19॥

जाना पड़ता कहा कृष्ण ने
जो है जग में आता।
भू-तल तक ही उससे रहता
मात्र हमारा नाता।
आत्मा तो सच्चिदानन्द
निर्लिप्त अलिङ्ग कहाता।
इस पार्थिव शरीर के आगे
कौन पिता-सुत-माता ॥20॥

भेजा था वह तात तपन[1] ने
जगत्ताप हरने को।
चारित्रिक तम मानवता का
पूर्ण दूर करने को।
शील और वीरता दान तप,
ज्ञान - रश्मि भरने को।
प्रण के पालन और मित्रता
पर हँस कर मरने को ॥21॥

बना विश्व का वंद्य शोच्य[2],
वह कैसे हो सकता है।
जो है जग ने उससे पाया,
कैसे खो सकता है।
पाकर जिसे निखिल[3] यह
वसुधा ऐसी धन्य हुई हो।
ऐसे अनुपम सुत को जनकर
तुम तो धन्य हुई हो ॥22॥

□□

1. सूर्य; 2. शोक करने योग्य; 3. सम्पूर्ण।